एम.एम. से पहले कुमार, जे

जगदीश चंद गुप्ता और अन्य-याचिकाकर्ता

बनाम

डॉ। राजिंदर प्रसाद और अन्य-प्रतिवादी सी.आर. संख्या 2570 ऑफ़ 2000

20 मार्च, 2002

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908– धारा 151, 152, 153, और 153-ए- ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित विभाजन की प्रारंभिक डिक्री, प्रथम अपीलीय न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई - कार्यकारी न्यायालय डिक्री के निष्पादन का आदेश दे रहा है - क्या प्रथम अपीलीय न्यायालय अपने निर्णय और बिक्री में संशोधन करके डिक्री को संशोधित कर सकता है - माना गया, नहीं - न्यायालय के पास केवल उन गलतियों को सुधारने का अधिकार क्षेत्र है जो प्रकृति में लिपिकीय हैं और चरित्र में ठोस नहीं हैं।

माना गया कि अपर. जिला न्यायाधीश ने 15 मई, 1999 के फैसले और डिक्री में महत्वपूर्ण संशोधन की अनुमति दी और घोषित किया कि वादी-याचिकाकर्ता संख्या 1, प्रतिवादी-और प्रतिवादी-याचिकाकर्ता संख्या 2 अपनी बहनों के साथ संपत्ति के 1/7वें हिस्से के हकदार होंगे जिन्हें प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 से 5 के रूप में शामिल किया गया है। वास्तव में, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने 15 मई, 1999 को ट्रायल कोर्ट द्वारा पहुंचे सभी मुद्दों पर निष्कर्ष की पुष्टि करते हुए अपील को खारिज कर दिया था।

संहिता की धारा 152, 153, 153-ए के तहत निर्णय में हुई गलतियों को सुधारा जा सकता है जो लिपिकीय प्रकृति की हैं, न कि जो मूल प्रकृति की हैं। इसलिए, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

(पैरा 15 और 16)

संजय बंसल, याचिकाकर्ता के वकील

आदर्श जैन, प्रतिवादी संख्या 1 के वकील।

एम.एम. कुमार, जे.

निर्णय

(1) यह पुनरीक्षण याचिका अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, फ़रीदाबाद द्वारा पारित दिनांक 12 मई, 2000 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है, जिसमें संहिता की धारा 151, 152, 153 और 153-ए

के तहत दायर प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर 1 के आवेदन को अनुमति दी गई है। सिविल प्रक्रिया, 1908 (संक्षिप्तता के लिए, 'संहिता') 15 तारीख के फैसले और डिक्री को सही करते हुए

मई, 1999.

(2) इस याचिका में सामने आए मामले के तथ्य यह हैं कि वादी-याचिकाकर्ता और प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 1 सगे भाई हैं जबकि प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 से 5 उनकी सगी बहनें हैं। उन्होंने एक संयुक्त हिंदू परिवार का गठन किया, जिसके कर्ता उनके पिता स्वर्गीय डॉ. सोहन लाई थे। परिवार की वंशावली तालिका इस प्रकार है:-

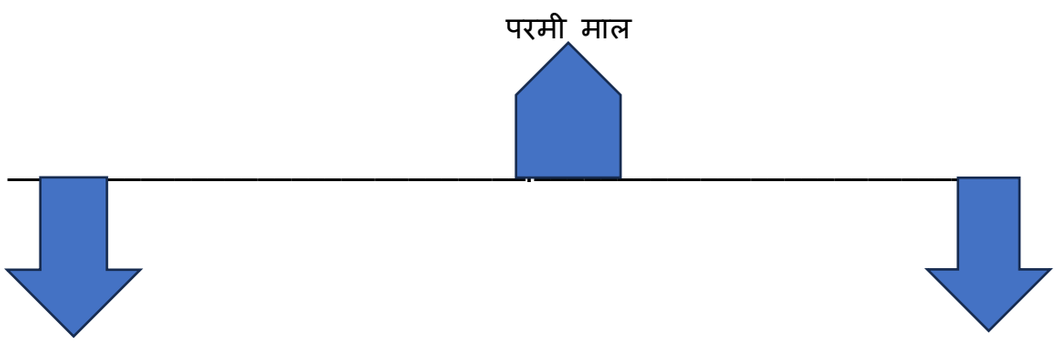

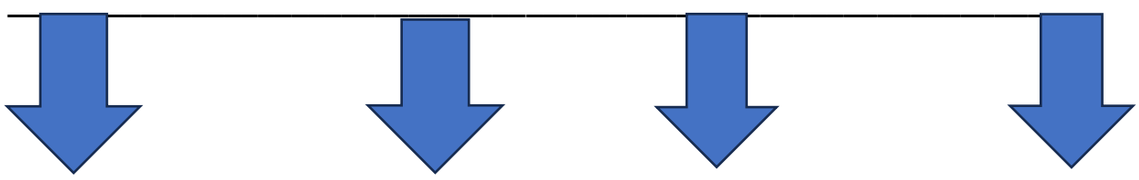

जगदीश चंद (वादी-याचिकाकर्त क्रमांक 1	राजिंदर पार्षद (प्रतिवादी- प्रतिवादी नंबर 1)	मनोज कुमार (प्रतिवादी-याचिकाकर्ता संख्या 2)	चार बेटियां अर्थात् पुष्पा देवी, उषा देवी सरला देवी और मधु बाला(प्रतिवादी- प्रतिवादी संख्या 2 से 5)।

3) वादी याचिकाकर्ता संख्या 1 ने 5 जनवरी, 1993 को एक नागरिक मुकदमा संख्या 6 दायर किया, जिसमें सहदायिक संपत्ति में 1/3 हिस्सेदारी का दावा किया गया था, जिसमें बल्लबगढ़ में स्थित एक घर और एक भूखंड शामिल था, मुख्य में स्थित दुकान में 1/6 हिस्सेदारी थी। क्योंकि उक्त दुकान का दूसरा आधा हिस्सा वादी-याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 के चचेरे भाई हुकम चंद

के बेटे राम नाथ और प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 1 से 5 के पास संयुक्त रूप से था। वादी-याचिकाकर्ता संख्या। 1 ने मुकदमे में विशेष रूप से अनुरोध किया कि उसकी बहनें, अर्थात् श्रीमती। पुष्पा देवी, श्रीमती. उषा देवी, श्रीमती. सरला देवी और मधु बाला प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 से 5 के पास सहदायिक संपत्तियों में कोई हिस्सा नहीं था क्योंकि उन्होंने अपनी शादी के समय पहले ही अपने हिस्से से अधिक हिस्सा ले लिया था। प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या.

1 ने अकेले ही मुकदमा लड़ा और प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 से 5 सेवा के बावजूद उपस्थित नहीं हुए और इसलिए ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित 9 नवंबर, 1996 के आदेश के तहत एकपक्षीय कार्रवाई की गई। प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर 1 ने अपने लिखित बयान में यह रुख अपनाया कि उनके पिता डॉ. सोहन लाई की मृत्यु के बाद मुकदमे की संपत्ति वादी-याचिकाकर्ता नंबर 1, प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर 1 और प्रतिवादी-याचिकाकर्ता नंबर के बीच संयुक्त बनी रही। .2 लेकिन उनके द्वारा मौखिक विभाजन के आधार पर वर्ष 1972 में इसका बंटवारा कर दिया गया। तदनुसार (i) घर को वादी-याचिकाकर्ता संख्या 1, प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 1 और प्रतिवादी-याचिकाकर्ता संख्या 2 के बीच समान शेयरों में विभाजित किया गया था; (ii) भूखंड को वादी-याचिकाकर्ता नंबर 1 प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर 1 और प्रतिवादी-याचिकाकर्ता मो 2 के बीच समान शेयरों में विभाजित किया गया था; और (iii) मुख्य बाजार बल्लभगढ़ स्थित दुकान का पूरा आधा हिस्सा दे दिया गया

प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 1 प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 से 5 के विवाह पर उसके द्वारा किए गए खर्चों के बदले में। प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा यह दलील दी गई थी कि प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 से 5 आवश्यक पक्ष नहीं थे क्योंकि वादी-याचिकाकर्ता संख्या 1, प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 1 और प्रतिवादी-याचिकाकर्ता संख्या 2 के बीच मौखिक विभाजन पहले ही हो चुका है। उस आधार पर, मुकदमे को खारिज करने की प्रार्थना की गई थी।

4) पक्षों की दलीलों पर, ट्रायल कोर्ट ने 10 मई, 1995 को निम्नलिखित मुद्दे तय किए:

1.क्या वाद की संपत्ति का पहले ही पक्षों के बीच बंटवारा हो चुका है जैसा कि प्रतिवादी नंबर 1 ने आरोप लगाया है

लिखित कथन का पैरा क्रमांक 1? ओपीडी

2. यदि वाद संख्या 1 सिद्ध नहीं होता है तो वाद संपत्ति में पक्षों का हिस्सा कितना है? ऑप

3. क्या वादी का वाद वर्तमान स्वरूप में चलने योग्य नहीं है? ओपीडी 4. क्या आवश्यक पार्टियों में शामिल न होने के लिए मुकदमा खराब है? ओपीडी

5. राहत.

(5) अंक संख्या 1 का निर्णय प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 1 के विरुद्ध किया गया क्योंकि वह यह साबित करने में विफल रहा कि मुकदमे की संपत्ति का विभाजन किया गया था। मुद्दा संख्या 2 पर, ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष यह है कि वादी-याचिकाकर्ता संख्या 1, प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 1 और प्रतिवादी-याचिकाकर्ता संख्या 2 प्रत्येक घर में 1/3 शेयर के हकदार थे

और प्लॉट और वे राम नाथ के रूप में मुख्य बाजार बल्लभगढ़ में स्थित दुकान के आधे हिस्से में से प्रत्येक के लिए एक तिहाई हिस्से के हकदार थे। दुकान के शेष 1/2 हिस्से पर मालिक का कब्ज़ा था। हुकम चंद के पुत्र जो स्वर्गीय डॉ सोहन लाई के भाई थे और मुकदमे का फैसला सुनाया गया और संबंध में विभाजन की प्रारंभिक डिक्री दी गई वाद संपत्ति का वादी-याचिकाकर्ता संख्या के पक्ष में पारित किया गया।

1 और प्रतिवादी-प्रतिवादी के खिलाफ. सिविल जज (जूनियर डिवीजन), फरीदाबाद द्वारा पारित 30 अगस्त, 1997 के फैसले और डिक्री के खिलाफ एक अपील दायर की गई थी जिसे भी खारिज कर दिया गया था। 15 मई, 1999 को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, फ़रीदाबाद और यहाँ तक कि डॉ. राजिंदर प्रसाद प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा दायर नियमित दूसरी अपील को इस न्यायालय ने 4 नवंबर ,1999को खारिज कर दिया।

6) वादी-याचिकाकर्ता संख्या 1 द्वारा एक आवेदन दायर किया गया था जिसमें आरोप लगाया गया था कि प्रतिवादी-प्रतिवादी निर्णय और डिक्री की शर्तों के अनुसार 30 अगस्त, 1997 के विभाजन के प्रारंभिक डिक्री का पालन करने में विफल रहे हैं। 29 सितंबर, 1999 को ट्रायल कोर्ट ने एक स्थानीय आयुक्त, अर्थात् एल.के. को नियुक्त किया। ग्रोवर, अधिवक्ता ने उन्हें प्रारंभिक डिक्री के संदर्भ में विभाजन का तरीका सुझाने का निर्देश दिया। स्थानीय आयुक्त को 17 नवंबर, 1999 को या उससे पहले अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था। 28 अक्टूबर, 1999 को, प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर 1 ने आदेश की समीक्षा/वापसी की मांग करते हुए एक आवेदन दायर किया।

दिनांक 29 सितंबर, 1999 को इस आधार पर कि 29 सितंबर, 1999 को वादी-याचिकाकर्ता नंबर 1 ने ट्रायल कोर्ट को गुमराह किया और यह खुलासा करने में विफल रहा कि 30 अगस्त, 1997 को पारित प्रारंभिक डिक्री को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, फरीदाबाद द्वारा संशोधित किया गया था, - के माध्यम से उनका निर्णय दिनांक 15 मई, 1999 था। यह आरोप लगाया गया था कि, ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित डिक्री दिनांक 30 अगस्त, 1997 के माध्यम से, वादी-याचिकाकर्ता नं.

1, प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर 1 और प्रतिवादी-याचिकाकर्ता नंबर 2 को प्रत्येक मुकदमे की संपत्ति में एक तिहाई हिस्सा दिया गया था, जबकि विद्वान अतिरिक्त अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने 15 मई, 1999 को अपने फैसले और डिक्री द्वारा यह माना था कि मुकदमे की संपत्तियां वादी-याचिकाकर्ता और प्रतिवादी-याचिकाकर्ता संख्या 2 सहित सभी प्रतिवादी-प्रतिवादियों के बीच समान हिस्से में विभाजित किया जाना था। दावा किया गया कि फैसले के पैरा नंबर 17 में डिक्री की शर्तों का जिक्र है. इसलिए, प्रार्थना की गई कि 29 सितंबर, 1999 का आदेश जिसमें स्थानीय आयुक्त को 30 अगस्त, 1997 के प्रावधानों के अनुसार विभाजन के तरीके का सुझाव देने का निर्देश दिया गया था, की समीक्षा की जानी चाहिए। आवेदन का विरोध किया गया और निष्पादन न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश दर्ज करके आवेदन को खारिज कर दिया-

पक्षों की प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार करने के बाद, यह देखा गया कि विद्वान एडीजे, फ़रीदाबाद द्वारा निर्णयों में की गई टिप्पणियाँ केवल अपीलकर्ता द्वारा संबोधित तर्क हैं और मामले की

योग्यता पर निष्कर्ष नहीं हैं। हालाँकि, भले ही निष्कर्ष समान हों, इस अदालत के पास उक्त निष्कर्षों की समीक्षा करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है और दूसरी बात, यदि वे अपील में पारित डिक्री की तुलना में कानून के सख्त पत्र से भिन्न हैं, तो यह अदालत निष्पादन अदालत है। मामले में निकाली गई प्रारंभिक डिक्री के अनुसार अंतिम डिक्री पारित करनी होगी। प्रारंभिक डिक्री वादी और प्रतिवादी नंबर 1 और 2 में से प्रत्येक को एक तिहाई हिस्सा मानते हुए पारित की गई थी और उक्त प्रारंभिक डिक्री को अपीलीय न्यायालय के साथ-साथ माननीय उच्च न्यायालय द्वारा भी बनाए रखा गया था। निष्पादन न्यायालय डिक्री को उसी रूप में निष्पादित करने के लिए बाध्य है और उसके पास डिक्री को संशोधित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता कि डिक्री क्षेत्राधिकार के बिना है या अन्यथा शून्य है। वर्तमान मामले में आदेश की समीक्षा के लिए ऐसा कोई आधार नहीं बनाया गया है और इसलिए मुझे यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि जेडी नंबर 1 द्वारा दिया गया आवेदन बिना किसी आधार के है और खारिज करने योग्य है। इसके अलावा, प्रतिवादियों ने स्वयं अपने लिखित बयान में वादी और प्रतिवादी नंबर 1 और 2 के पक्ष में मुकदमे की संपत्ति में पार्टियों के शेयरों को एल/थर्ड के रूप में स्वीकार किया है। अब उन्हें यह दावा करने से रोक दिया गया है कि सभी पक्षों के पास एल/थर्ड है। अब उन्हें यह दावा करने से रोक दिया गया है कि सभी पक्षों के पास मुकदमे की संपत्ति में 1/7वां हिस्सा है।

7) अतिरिक्त जिला न्यायाधीश , फ़रीदाबाद के समक्ष 15 मई, 1999 के फैसले और डिक्री में सुधार के लिए संहिता की धारा 151, 152, 153, 153-ए के तहत एक आवेदन दायर करके प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा एक और प्रयास किया गया था। अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, फ़रीदाबाद ने, इस पुनरीक्षण याचिका में दिए गए अपने आदेश के तहत, निम्नलिखित आदेश दर्ज करके आवेदन की अनुमति दी: -

“वास्तव में, मुकदमे में वादी ने प्रार्थना खंड में विशिष्ट हिस्सेदारी का दावा नहीं किया है और ट्रायल कोर्ट द्वारा तैयार की गई डिक्री शीट में कहीं भी यह निर्धारित नहीं किया गया है कि वादी एक तिहाई हिस्से का हकदार है। हालांकि फैसले में इस तथ्य का जिक्र है. इसी प्रकार, अपीलीय अदालत ने अपील खारिज करते समय यह स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया है कि वादी किस हद तक संपत्ति में हिस्सेदारी का हकदार है। दूसरे शब्दों में, ट्रायल कोर्ट और अपीलीय अदालत द्वारा जारी डिक्री सही ढंग से तैयार नहीं की गई है। विद्वान अपीलीय न्यायालय के फैसले का आशय यह है कि सभी पक्ष अपने पिता वैद सोहन लाई द्वारा छोड़ी गई संपत्ति में से 1/7 हिस्सा पाने के हकदार हैं। परिणामस्वरूप, आवेदन स्वीकार किये जाने योग्य है। इस प्रकार, निर्णय को इस हद तक सही करने का आदेश दिया गया है कि वादी 1/7वें हिस्से का हकदार है और सभी उत्तरदाता भी वैद सोहन लाई द्वारा छोड़ी गई संपत्ति में 1/7वें हिस्से के हकदार हैं। डिक्री को तदनुसार संशोधित करने की भी आवश्यकता है।

(8) दिनांक 12 मई, 2000 के आदेश का प्रभाव यह है कि सभी पक्ष अपने पिता डॉ. सोहन लाई द्वारा छोड़ी गई संपत्ति में से 1/7वां हिस्सा पाने के हकदार हैं और यह निर्देशित किया गया था कि निर्णय और डिक्री सही होने के लिए उत्तरदायी है। इसलिए। इस आदेश को अब वर्तमान पुनरीक्षण याचिका में चुनौती दी गई है।

(9) 12 मई 2000 के आदेश पर आपत्ति करने वाले वादी-याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री संजय बंसल ने निम्नलिखित तीन तर्क उठाए हैं:

(i) विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश 15 मई, 1999 की डिक्री को संशोधित नहीं कर सकते थे या 30 अगस्त, 1997 के फैसले और डिक्री में सुधार के लिए निर्देश जारी नहीं कर सकते थे;

ii) प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 1 के पास संहिता की धारा 151, 152, 153-ए के तहत आवेदन दायर करने का कोई अधिकार नहीं था। यदि आवेदन दाखिल करना ही था, तो इसे केवल प्रतिवादी-याचिकाकर्ता संख्या 2 या डॉ. सोहन लाई की बेटियों प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 से 5 द्वारा ही दायर किया जा सकता था; और

(iii) दिनांक 12 मई, 2000 का आदेश टिकाऊ नहीं है क्योंकि निष्पादन न्यायालय ने पहले ही 19 जनवरी, 2000 को एक आदेश पारित कर दिया था जो संहिता की धारा 151, 152, 153, 153-ए के तहत नए आवेदन दाखिल करने पर रोक लगाता है। पुनर्न्याय के सिद्धांत लागू होंगे।

(10) अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान वकील ने द्वारका दास बनाम एमपी राज्य और अन्य (1) में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया है, और तर्क दिया है कि संहिता की धारा 152 के तहत न्यायालय के न्यायक्षेत्र निर्णयों, डिक्री या आदेशों में लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटियों को ठीक करने तक सीमित है। जो किसी आकस्मिक चूक या चूक से उत्पन्न होता है। विद्वान वकील के अनुसार, संहिता की धारा 152 के तहत विचार की गई शक्ति न्यायालय द्वारा अपने मंत्रिस्तरीय कार्यों की गलतियों को सुधारने तक ही सीमित है और निर्णय, डिक्री या आदेश की घोषणा के बाद प्रभावी न्यायिक आदेश पारित करने का प्रावधान नहीं करती है, खासकर जब वे निर्णय, डिक्री या आदेश को उच्च न्यायालय द्वारा बरकरार रखा जाता है। उन्होंने आगे कहा कि न्यायालय या न्यायाधिकरण निर्णय, डिक्री या आदेश पारित करने के बाद कार्यात्मक अधिकारी बन जाता है और पहले पारित निर्णय, डिक्री या आदेश की शर्तों को बदलने में सक्षम नहीं है। उन्होंने संहिता के आदेश 21 के नियम 11 के उप-नियम 2 (जे) के प्रावधानों का भी उल्लेख किया है और तर्क दिया है कि 19 जनवरी, 2000 का आदेश संहिता के उप-नियम 2 (जे) के प्रावधानों के अनुरूप है। निष्पादन संहिता वादी-याचिकाकर्ता (डिक्री धारक) को न्यायालय की सहायता देने में सक्षम थी।

11) अपनी दलील के समर्थन में वादी-याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री संजय बंसल ने 30 अगस्त, 1997 के अपने फैसले और डिक्री में सिविल जज के समक्ष दोनों पक्षों द्वारा की गई स्वीकारोक्ति की ओर भी मेरा ध्यान आकर्षित किया है, जहां यह माना गया है कि उनका जिन सभी बहनों की शादी हो चुकी थी, उनका मुकदमे की संपत्ति में कोई हिस्सा नहीं था, जिसके परिणामस्वरूप केवल तीन शेयरधारक थे, अर्थात्, वादी-याचिकाकर्ता नंबर 1, प्रतिवादी-याचिकाकर्ता नंबर 2 और प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर दोनों। 1 जो सगे भाई थे। उन्होंने अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के फैसले के अंतिम पैराग्राफ का भी उल्लेख किया है जहां विभिन्न मुद्दों पर विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों की पुष्टि की गई थी और अपील खारिज कर दी गई थी। अपने तर्क

को और अधिक पुष्ट करते हुए, उन्होंने प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा दायर नियमित दूसरी अपील में उठाए गए सभी आधारों का उल्लेख किया है जिसमें यह तर्क विशेष रूप से उठाया गया था। विद्वान वकील के अनुसार तर्क पराजित माना जाएगा क्योंकि प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा दायर 1999 का आरएसए नंबर 3807 4 नवंबर, 1999 को खारिज कर दिया गया था और सुप्रीम कोर्ट में कोई अपील नहीं की गई थी।

(12) प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर 1 के विद्वान वकील श्री आदर्श जैन ने संहिता के आदेश XX नियम 6 के प्रावधानों का उल्लेख किया है और प्रस्तुत किया है कि डिक्री हमेशा निर्णय की शर्तों से सहमत होगी। विद्वान वकील के अनुसार, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा 15 मई, 1999 को पारित फैसले के पैरा 17 ने मुकदमे की संपत्ति में 1/3 हिस्से के लिए वादी-याचिकाकर्ता के दावे को काफी हद तक खारिज कर दिया और प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या के दावे को बरकरार रखा। 1 कि वादी-याचिकाकर्ता वाद की संपत्ति में 1/7वां हिस्सा और मुख्य बाजार, बल्लबगढ़ स्थित दुकान में 1/4वां हिस्सा पाने का हकदार था। अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय का पैरा 17 इस प्रकार है:-

इसमें कोई संदेह नहीं है कि अपीलकर्ता 1972 से विवादित दुकान में राम नाथ के साथ अपनी मेडिकल प्रैक्टिस कर रहा है और दोनों पक्ष अलग-अलग रह रहे हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि विवाद में संपत्ति का विभाजन सीमा और सीमा के आधार पर हुआ है। इसलिए, यह माना जाता है कि संपत्ति अभी भी संयुक्त और आंशिक है। अपीलकर्ता के साथ-साथ सभी छह उत्तरदाताओं के पास उनके माता-पिता द्वारा छोड़ी गई संपत्ति में 1/7 हिस्सा है। विवादित मकान और प्लॉट में उनका 1/7 हिस्सा है और विवादित दुकान में उनका 1/4 हिस्सा है, क्योंकि आज तक उनका बंटवारा नहीं हुआ है। यदि प्रतिस्पर्धी पक्षों के पास इस तथ्य के संबंध में कोई विवाद नहीं है कि केवल अपीलकर्ता और प्रतिवादी संख्या 1 और 2 ही विवाद में संपत्ति के मालिक हैं, तो भी इसे सही नहीं माना जा सकता है, खासकर जब यह स्थापित हो गया हो कि सभी सात जो व्यक्ति वर्तमान मुकदमे में पक्षकार हैं, उनके पास विवाद संपत्ति में बराबर हिस्सेदारी है। वादपत्र के पैरा संख्या 3 में पक्षों की हिस्सेदारी के संबंध में प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से गलत विवरण भी मुकदमे को खारिज करने के लिए पर्याप्त नहीं है जैसा कि अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क दिया है।

(13) मैंने पक्षों के विद्वान वकील द्वारा की गई संबंधित प्रस्तुतियों पर विचारपूर्वक विचार किया है और मेरा विचार है कि यह याचिका स्वीकार करने योग्य है क्योंकि संहिता की धारा 152 के तहत केवल निर्णयों, डिक्री या आदेशों में लिपिकीय या अंकगणितीय प्रकृति की त्रुटियां उत्पन्न होती हैं। इसमें किसी भी आकस्मिक चूक या चूक को किसी भी समय या तो स्वप्रेरणा से या किसी भी पक्ष के आवेदन पर ठीक किया जा सकता है। द्वारका दास (सुप्रा) के मामले में विद्वान वकील द्वारा उद्धृत निर्णय इस तर्क का पर्याप्त समर्थन करता है। उस मामले में, एक ठेकेदार ने प्रतिवादी द्वारा उसे देय अन्य राशियों का दावा करने के अलावा अनुबंध के उल्लंघन के लिए

क्षतिपूर्ति का दावा करते हुए एक मुकदमा दायर किया है। वसूली के लिए मुकदमा इस निर्देश के साथ तय किया गया था कि ठेकेदार रुपये की दर से भविष्य में ब्याज का भी हकदार होगा। 6% प्रतिवर्ष. इसके बाद, संहिता की धारा 152 के तहत आवेदन दायर किया गया था, जिसमें फैसले और डिक्री को सही करके मुकदमे की तारीख से डिक्री की तारीख तक ब्याज देने की प्रार्थना की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि ब्याज पेंडेंट-लाइट देने का आधार एक आकस्मिक चूक थी। ट्रायल कोर्ट ने उस आवेदन को स्वीकार कर लिया और माननीय सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने पर आवेदन खारिज कर दिया गया और पेंडेंट-लाइट ब्याज देने का दावा खारिज कर दिया गया। संहिता की धारा 152 के दायरे को समझाते हुए। उनका आधिपत्य इस प्रकार मनाया गया:-

6. सीपीसी की धारा 152 किसी भी आकस्मिक चूक या चूक से उत्पन्न त्रुटियों के निर्णयों, डिक्री या आदेशों में लिपिकीय या अंकगणितीय गलतियों को सुधारने का प्रावधान करती है। इस शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा अपने मंत्रिस्तरीय कार्यों की गलतियों के सुधार पर विचार करता है और निर्णय, डिक्री या आदेश के बाद प्रभावी न्यायिक आदेश पारित करने पर विचार नहीं करता है। कानून की स्थापित स्थिति यह है कि निर्णय, डिक्री या आदेश पारित होने के बाद, अदालत या न्यायाधिकरण कार्यात्मक अधिकारी बन जाता है और इस प्रकार पहले पारित निर्णयों, डिक्री और आदेशों की शर्तों को बदलने का हकदार नहीं होता है। जिन सुधारों पर विचार किया गया है, वे केवल आकस्मिक चूक या गलतियों को सुधारने के लिए हैं, न कि उन सभी चूकों और गलतियों को सुधारने के लिए जो न्यायालय द्वारा निर्णय, डिक्री या आदेश पारित करते समय की गई होंगी। जिस चूक को ठीक करने की मांग की गई है, वह मामले के गुण-दोष पर निर्भर करती है, जो धारा 152 के दायरे से परे है, जिसके लिए पीड़ित पक्ष के लिए उचित उपाय अपील या समीक्षा आवेदन दायर करना है।

इसका तात्पर्य यह है कि किसी जानबूझकर की गई चूक को सुधारने के लिए इस अनुभाग का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता, भले ही वह कितनी भी गलत क्यों न हो। यह देखा गया है कि नीचे की अदालतें उनके समक्ष लंबित मुकदमे में प्रभावी आदेश पारित करने के बाद भी सीपीसी की धारा 151 और 152 को उदारतापूर्वक लागू कर रही हैं। कोई भी अदालत, उपरोक्त धाराओं की आड़ में, आदेश के लिए अपने मूल निर्णय, डिक्री की शर्तों को संशोधित, परिवर्तित या जोड़ नहीं सकती है। मौजूदा मामले में, ट्रायल कोर्ट ने कथित उल्लंघन की तारीख से ब्याज देने के लिए अपीलकर्ता की प्रार्थना के बावजूद विशेष रूप से प्रतिवादी-राज्य को भविष्य के ब्याज का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी ठहराया था, जिसका निहितार्थ यह था कि

जहां तक पेंडेंट लाइट ब्याज का सवाल है, अदालत ने अपीलकर्ता के दावे को खारिज कर दिया था। पेंडेंट लाइट ब्याज न देने की चूक को आकस्मिक चूक या गलती नहीं माना जा सकता है, जैसा कि ट्रायल कोर्ट द्वारा गलत तरीके से किया गया था, - दिनांक 30 नवंबर, 1973 के आदेश के तहत। इसलिए, उच्च न्यायालय को उपरोक्त को रद्द करना उचित था। राज्य द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार करते हुए आदेश दें।" (महत्व जोड़ें)

14) जयलक्ष्मी कोएल्हो बनाम ओसवाल्ड जोसेफ कोएल्हो (2) के मामले में भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया गया है। उस मामले में, आपसी सहमति के आधार पर तलाक की डिक्री पारित की गई थी और समझौते की शर्तों को डिक्री में शामिल नहीं किया गया था। डिक्री पारित होने के बाद पति ने एक आवेदन दायर कर कहा कि आदेश में अन्य राहतें शामिल नहीं हैं जिनका समझौते में उल्लेख किया गया था। ऐसी ही एक चूक एक फ्लैट के हस्तांतरण से संबंधित थी जो समझौते का हिस्सा था। यह दावा किया गया था कि पत्नी को कुछ भुगतान करने के बाद फ्लैट पति को हस्तांतरित किया जाना था। फैमिली कोर्ट ने डिक्री में संशोधन का आदेश दिया और डिक्री में समझौते के विभिन्न खंडों को शामिल किया, जिसके कारण पूरे मामले के कानून की विस्तार से जांच करने के बाद बॉम्बे हाई कोर्ट में रिट याचिका दायर की गई और सुप्रीम कोर्ट में अपील की गई।

उनके आधिपत्य ने यह विचार किया कि डिक्री में समझौते की शर्तों को शामिल करने की चूक जैसी महत्वपूर्ण त्रुटि को कोड की धारा 152 के तहत ठीक नहीं किया जा सकता है। उनके आधिपत्य का दृष्टिकोण पैरा 13 और 14 से घटाया जा सकता है जो निम्नानुसार है

जहां तक कानूनी स्थिति का सवाल है, इस प्रस्ताव के बारे में शायद ही कोई संदेह होगा कि धारा 152 सीपीसी के संदर्भ में, अंकगणित या लिपिकीय त्रुटि या आकस्मिक पर्ची के कारण डिक्री में हुई किसी भी त्रुटि को अदालत द्वारा ठीक किया जा सकता है। प्रावधानों के पीछे सिद्धांत यह है कि किसी भी पक्ष को न्यायालय की गलती के कारण नुकसान नहीं उठाना चाहिए और आदेश या डिक्री पारित करते समय न्यायालय द्वारा जो भी इरादा किया गया है वह उसमें उचित रूप से प्रतिबिंबित होना चाहिए, अन्यथा यह केवल मामले को आगे बढ़ाने के सिद्धांत के लिए विनाशकारी होगा। न्याय। इस मुद्दे पर निम्नलिखित मामलों का संदर्भ दिया जा सकता है:

सीपीसी की धारा 152 के तहत प्रावधान का आधार मैक्सिम एक्टस क्यूरिया नेमिनम ग्रेवबिट पर पाया जाता है यानी अदालत का कोई भी कार्य किसी भी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा (जेनक सेंट-118) जैसा कि असम टी कॉरपोरेशन में रिपोर्ट किए गए एक मामले में देखा गया है। लिमिटेड बनाम नारायण सिंह एडीआर 1981 गौ. 41. इसलिए, न्यायालय की एक अनजाने में हुई गलती जो किसी भी पक्ष के मुद्दे पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है, उसे सुधारा जाना चाहिए। एल जानकीरम्मा अय्यर बनाम पी.एम. मामले में दर्ज एक अन्य मामले में। निओलकांत अय्यर एआईआर 1962 एससी 633 में पाया गया कि गलती से डिक्री में "मेस्ने प्रॉफिट" के स्थान पर "शुद्ध लाभ" शब्द लिख दिया गया था। संहिता के 152 के पूर्व भाग को देखने से यह भूल स्पष्ट हो गयी थी

गलती को अनजाने में हुआ माना गया। भीखी लाई बनाम ट्रिबेनी एआईआर 1965 एससी 1935 में यह माना गया था कि जो डिक्री फैसले के अनुरूप थी, उसे सुधारा नहीं जा सकता। मास्टर कंस्ट्रक्शन कंपनी (पी) लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य एआईआर 1966 एससी 1047 में रिपोर्ट किए गए एक अन्य मामले में यह देखा गया है कि अंकगणितीय गलती गणना की गलती है, लिपिकीय

गलती लिखने या टाइपिंग में हुई गलती है जबकि एक त्रुटि उत्पन्न होती है या आकस्मिक चूक या चूक से होने वाली त्रुटि न्यायालय की ओर से हुई लापरवाह गलती के कारण हुई त्रुटि है जिसे सुधारा जाना चाहिए। इस मुद्दे को स्पष्ट करने के लिए, इसे एक उदाहरण के रूप में दर्शाया गया है कि ऐसे मामले में जहां आदेश में कुछ ऐसा हो सकता है जिसका उल्लेख डिक्री में नहीं किया गया है, वह डिक्री में अनजाने में हुई चूक या गलती का मामला होगा। ऐसी चूकें अदालत के लिए जिम्मेदार हैं जो कुछ ऐसा कह सकती है जिसे कहने या छोड़ने का उसका इरादा नहीं था। गलती के ऐसे सुधार के लिए गुण-दोष के आधार पर किसी नए तर्क या पुनर्तर्क की आवश्यकता नहीं है। द्वारका दास बनाम मध्य प्रदेश राज्य में दर्ज एक मामले में। 1999(3) एससीसी 500 इस न्यायालय ने माना है कि आदेश क्यूआर डिक्री में सुधार उस गलती या चूक का होना चाहिए जो आकस्मिक है और मामले की खूबियों पर विचार किए बिना जानबूझकर नहीं है। आगे यह देखा गया है कि प्रावधानों को मूल डिक्री की शर्तों को संशोधित करने, बदलने या जोड़ने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है ताकि मामले में फैसले के बाद प्रभावी न्यायिक आदेश पारित किया जा सके। ट्रायल कोर्ट ने ब्याज पेंडेंट लाइट को मंजूरी नहीं दी थी, हालांकि ऐसी प्रार्थना वादी में की गई थी, लेकिन धारा 152 सीपीसी के तहत दायर एक आवेदन पर टीएम निर्णय और डिक्री को सही करके इस आधार पर ब्याज पेंडेंट लाइट प्रदान किया गया था कि ब्याज नहीं दिया गया था पेंडेंट लाइट एक आकस्मिक चूक थी। यह माना गया कि उच्च न्यायालय ने आदेश को रद्द करके सही किया था। न्यायालयों द्वारा सीपीसी की धारा 152 के तहत इसके दायरे से परे प्रावधानों के उदार प्रयोग की निंदा की गई है। उपरोक्त दृष्टिकोण अपनाते हुए इस न्यायालय ने तिरुअनावल्ली अम्माड बनाम पी. वेणुगोपाला पिल्लई एआईआर 1940 मद 29 में मद्रास उच्च न्यायालय के फैसले को मंजूरी दे दी थी और महाराज पुत्तु लाई बनाम श्रीपाल सिंह एआईआर 1937 अवध 1991 पर भरोसा किया था।

इसी तरह का दृष्टिकोण इस न्यायालय द्वारा बिहार राज्य बनाम नीलमणि साहू 1996(11) एससीसी 528 में दर्ज एक मामले में लिया गया है, जहां न्यायालय ने मामले पर पुनर्विचार करने पर अंकगणितीय गलती की आड़ में एक नए निष्कर्ष पर पहुंचा। इस मामले में पेड़ों की संख्या और उनका मूल्यांकन पहले ही अंतिम रूप से तय हो चुका था। इसी प्रकार बाई शाक्रिबेन बनाम विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी 1996(4) एससीसी 533 के मामले में इस न्यायालय ने पाया कि धारा 23(1-ए) के तहत अतिरिक्त राशि के पुरस्कार की चूक, धारा 28 के तहत बढ़ा हुआ ब्याज और सोलेटियम आदि को नहीं माना जा सकता है। आदेश में लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि। जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है, राशि देने के आदेश में संशोधन के लिए आवेदन को गलत माना गया। वास्तव में ऐसी अंतर्निहित शक्तियाँ आम तौर पर सभी अदालतों और प्राधिकारियों को उपलब्ध होंगी चाहे इस तथ्य पर ध्यान दिए बिना कि धारा के तहत क्या प्रावधान हैं।

---

1) 1999 (3) एससीसी 500

152 सीपीसी किसी विशेष कार्यवाही पर सख्ती से लागू हो भी सकती है और नहीं भी। ऐसे मामले में जहां यह स्पष्ट है कि न्यायालय जो कुछ करना चाहता था, लेकिन वह गलती से चूक गया या लिपिकीय या अंकगणितीय गलती के कारण कोई गलती हो गई, तो यह केवल न्याय के उद्देश्यों को आगे बढ़ाएगा ताकि न्यायालय ऐसी गलती को सुधारने में सक्षम हो सके। लेकिन ऐसी शक्ति का प्रयोग करने से पहले अदालत को कानूनी रूप से संतुष्ट होना चाहिए और एक वैध निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि आदेश या डिक्री में कुछ ऐसा शामिल है या हटा दिया गया है जिसका अन्यथा इरादा था, यानी डिक्री पारित करते समय अदालत को अपने ध्यान रखें कि आदेश या डिक्री एक विशेष तरीके से पारित की जानी चाहिए लेकिन लिपिकीय, अंकगणितीय त्रुटि या आकस्मिक चूक के कारण वह मंशा डिक्री या आदेश में तब्दील नहीं हो पाती है। तथ्य और परिस्थितियाँ इस तथ्य का सुराग दे सकती हैं कि अदालत ने क्या इरादा किया था, लेकिन अनजाने में आदेश या निर्णय में इसका उल्लेख नहीं किया गया है या जो कुछ होना ही नहीं था, वह इसमें जुड़ गया है। लिपिकीय, अंकगणितीय त्रुटियों या आकस्मिक चूक को सुधारने की शक्ति अदालत को मामले पर दोबारा विचार करने और यह पता लगाने का अधिकार देती है कि एक बेहतर आदेश या डिक्री पारित की जा सकती है या पारित की जानी चाहिए। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए मामले के गुण-दोष पर पुनर्विचार नहीं किया जाना चाहिए कि सुधार के लिए आदेश पारित करना बेहतर और उपयुक्त होता। दूसरे विचार में अदालत को यह लग सकता है कि उसने कुछ शर्तों में आदेश पारित करने में गलती की है, लेकिन ऐसी हर गलती धारा 152 सीपीसी के तहत निहित अदालत की अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग में इसके सुधार की अनुमति नहीं देती है।

इसे आरंभ में इच्छित किसी चीज़ तक ही सीमित रखा जाना चाहिए लेकिन ऐसे इरादे के विरुद्ध छोड़ दिया जाना चाहिए या जोड़ा जाना चाहिए

(15) ऊपर उल्लिखित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से निकाले गए कानून के सिद्धांत यदि वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू होते हैं, तो इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता है कि अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने 15 मई, 1999 के फैसले और डिक्री में महत्वपूर्ण संशोधन की अनुमति दी है। और घोषित किया कि वादी-याचिकाकर्ता नंबर 1, प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर 1 और प्रतिवादी-याचिकाकर्ता नंबर 2 अपनी बहनों के साथ मुकदमे की संपत्ति में 1/7वें हिस्से के हकदार होंगे, जिन्हें प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर 2 के रूप में शामिल किया गया है। 5. वास्तव में, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने 15 मई, 1999 को ट्रायल कोर्ट द्वारा पहुंचे सभी मुद्दों पर निष्कर्ष की पुष्टि करते हुए अपील को खारिज कर दिया था। 15 मई 1999 के अपने फैसले के अंतिम पैरा में अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने अपनी राय दर्ज की है, जो इस प्रकार है:

“इसलिए, उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, यह माना जाता है कि विभिन्न मुद्दों पर निचली अदालत द्वारा निकाले गए निष्कर्षों में कोई गड़बड़ी नहीं है और इसकी पुष्टि की जाती है। नतीजतन, आक्षेपित निर्णय और डिक्री को बरकरार रखते हुए, वर्तमान अपील को खारिज कर दिया गया है और पार्टियों को अपनी लागत वहन करने के लिए छोड़ दिया गया है। तदनुसार डिक्री शीट तैयार की जाए और फ़ाइल को रिकॉर्ड रूम में भेज दिया जाए।”

(16) इसके अलावा अब यह तर्क नहीं दिया जा सकता है कि बहनें अपने शेयरों की हकदार थीं क्योंकि प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 से 5 बहनों ने कभी भी अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के समक्ष अपना दावा नहीं जताया था, न ही इस न्यायालय के समक्ष उनके द्वारा कोई अपील दायर की

गई था। इसके अलावा, संहिता की धारा 152, 153, 153-ए के तहत निर्णय में गलतियों को सुधारा जा सकता है जो लिपिकीय प्रकृति की हैं, न कि जो मूल प्रकृति की हैं। यह बताना भी सार्थक है कि एक विशिष्ट दलील कि प्रतिवादी-प्रतिवादी, वादी-याचिकाकर्ता और अन्य सभी पक्ष मुकदमे की संपत्ति में 1/7वें हिस्से के हकदार थे, 1999 के आरएसए संख्या 3807 में इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया था और इसे 4 नवंबर, 1999 को खारिज कर दिया गया था। आधार संख्या 15 में यह शामिल किया गया है कि याचिका को अगले पैरा में पर्याप्त रूप से समर्थन दिया गया है कि यह याचिका ली गई थी और इसे खारिज कर दिया गया माना गया था। इसलिए, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

(17) वादी-याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान वकील द्वारा उठाया गया दूसरा तर्क कि न्याय-न्याय का सिद्धांत लागू होगा क्योंकि निष्पादन न्यायालय ने 19 जनवरी, 2000 को एक आदेश पारित किया था, वह स्वीकार करने योग्य नहीं है क्योंकि निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश में, लिया गया दृष्टिकोण था निष्पादन न्यायालय के पास निर्णय और डिक्री में दर्ज निष्कर्ष की समीक्षा करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था और यह भी माना गया कि निष्पादन न्यायालय उस मामले में तैयार प्रारंभिक डिक्री के अनुसार अंतिम डिक्री पारित करने के लिए बाध्य था, जिसका प्रभाव यह था कि प्रत्येक वादी-याचिकाकर्ता, प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर 1 और प्रतिवादी-याचिकाकर्ता नंबर 2 1/3 शेयर के हकदार थे। इसलिए, यह माना गया कि निष्पादन न्यायालय के पास डिक्री को संशोधित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि पुनर्न्याय के सिद्धांत का उपर्युक्त स्थिति में कोई अनुप्रयोग नहीं होगा।

(18) यह तर्क कि प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर 1 के पास कोई ल्यूकस स्टैंडी नहीं थी, भी खारिज किए जाने योग्य है क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर 1 ने अपनी बहनों की शादी पर भारी मात्रा में पैसा खर्च किया है और इसलिए, वह इसका हकदार था। यह तर्क उठाएं कि 1/7वां हिस्सा केवल वादी-याचिकाकर्ता संख्या 1 और प्रतिवादी-याचिकाकर्ता संख्या 2 को दिया जा सकता है।

19) संहिता के आदेश xx नियम 6 के प्रावधानों पर भरोसा करते हुए श्री आदर्श जैन द्वारा उठाए गए तर्क से निपटना भी उचित है कि डिक्री हमेशा निर्णय से सहमत होगी। यह सच है कि पैरा संख्या 17 में, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, फरीदाबाद ने इस तर्क को मौलिक रूप से खारिज कर दिया है कि वादी-याचिकाकर्ता संख्या 1, प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 1 और प्रतिवादी-याचिकाकर्ता संख्या 2 को केवल एक तिहाई हिस्सा उपलब्ध था। , फिर भी कोई यह नहीं भूल सकता कि प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा दायर 1999 की नियमित दूसरी अपील संख्या 3807 में इस न्यायालय के समक्ष एक विशिष्ट याचिका उठाई गई थी। प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा दायर अपील के आधारों के पैरा संख्या 15 निम्नानुसार पढ़ता है:-

"निम्नलिखित अदालतों ने गलती से मुद्दा संख्या 2 का फैसला किया है और गलत निष्कर्ष निकाला है कि सभी पक्षों के पास विवाद में संपत्ति में केवल 1/7वां हिस्सा है। नीचे दी गई अदालतें इस बात पर विचार करने में विफल रही हैं कि वादी-प्रतिवादियों के कथनों के अनुसार, वादी और प्रतिवादी नंबर 1 और 2 के पास विवाद में संपत्ति में 1/3 हिस्सा है और इसे विवादित या विवादित नहीं किया गया है। प्रतिवादी संख्या 3--6।"

(20) उपरोक्त उल्लिखित आधार के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा लिया गया आधार खारिज कर दिया गया माना जाता है क्योंकि नियमित दूसरी अपील 4 नवंबर 1999 को खारिज कर दी गई थी, - आदेश अनुलग्नक पी.4 के अनुसार। इसलिए, ऐसी स्थिति में, संहिता के आदेश XX नियम 6 के प्रावधान प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 1 के बचाव में नहीं आएंगे।

(21) ऊपर दर्ज कारणों से पुनरीक्षण याचिका स्वीकार की जाती है। अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, फ़रीदाबाद द्वारा पारित 12 मई, 2000 के आदेश को रद्द कर दिया गया है और डिक्री को वैसे ही कायम रहने दिया गया है, जैसा कि मूल रूप से ट्रायल कोर्ट ने 30 अगस्त, 1997 को जारी किया था।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

जसमीत कौर

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

(TraineeJudicial Officer)

कैथल, हरियाणा